शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

## सम्पादकीय

# चित्त खुला हो

विनोबा

ऋग्वेद में एक शब्द आता है, सह चित्तमेषाम् । यह ऋग्वेद का खास शब्द है। समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् - हम सबकी बैठक, हम सबका मन समान हो, हम सबका सहचित्त हो।

बार-बार इकट्ठा होना, सहचिंतन की प्रक्रिया की जरूरत महसूस करना, यह एक बहुत बड़ा भक्त लक्षण है। गीता ने इसे नाम दिया है, बोधयन्तः परस्परम् । अन्योन्य बोध-दान की क्रिया होनी चाहिए। आप मुझे बोध देते हैं और मैं आपको। कुरान में आता है, अमरहम शुरा बैनहुम्- आपस में सलाह-मशविरा कर के काम करना चाहिए। उसमें पूरा दिल एक-दूसरे के सामने खुलता है जैसे हम आपस में बिलकुल खुले ढंग से बोलते हैं। इसके मानी है कि मेरा चित्त आप पूरी तरह से जानते हैं और मैं आपका। इसलिए अन्योन्य विश्वास है।

आज की दुनिया में अन्योन्य विश्वास की बहुत कमी है। गहराई में पैठ कर एक-दूसरे को समझने की कोशिश नहीं की जाती। हमारा चित्त सामनेवाला नहीं जानता और उसका हम नहीं जानते। एक अंश जाना और बाकी के लिए गलतफहमी। थोड़ा-सा समझ में आया, उससे ज्यादा अंदाज लगा लिया और उससे फिर गलतफहमी बढ़ी! फलतः एक-दूसरे पर गलत हेतु का आरोपण हाता है और हम विश्वास खो बैठते हैं। विश्वास श्वास के समान है। व्यक्तिगत जीवन में जो स्थान श्वास का है, वही सामाजिक जीवन में विश्वास का है। श्वास न रहा तो व्यक्ति मर जायेगा। वैसा ही सामाजिक जीवन में विश्वास न रहा तो समाज मृतप्राय हो जायेगा। इसलिए मैं इस पर बहुत जोर देता हूं कि हमें बार-बार मिलना चाहिए, चाहे समय बरबाद क्यों न हो! निर्विकार चित्त है और परस्पर विमर्श हो रहा है, वह समय जाया नही जाता।

सहचित्त में मनुष्य जीवन की गूढ़तम भाकना को दूसरों के सामने खोलता है। जैसे सृष्टि खुली है नग्नरूपेण हमारे सामने है, वैसे ही हमारा दिल खुला होगा तो सहचित्त बनने में मदद होगी। यह चीज संसार में दुर्लभ है और परमार्थ में भी दुर्लभ है। संसार में माता-पिता, पति-पत्नी जीवनभर साथ रहते हैं, लकिन उनका सहचित्त नहीं बन पाता। ऊपर-ऊपर के स्तर पर संशय पड़ा है कि पता नहीं, इसके दिल में क्या है ? प्रेम है, इसलिये एक व्यवस्था चलती है, लेकिन सहचित्त नहीं। पारमार्थिक क्षेत्र में भी सहचित्त दुर्लभ है। क्योंकि वहां भी साधक ऊपर-ऊपर के स्तर पर एक होते हैं। विकार, विचार और भाव, इन स्तरों के नीचे के स्तर है, जिसे अभाव कहते हैं। वहां मनुष्य आत्मा की भूमिका में आता है। लेकिन उसमें हम नहीं पहुंचते। परिणामस्वरूप मनुष्य का गूढ़ आशय अव्यक्त रह जाता है, मालूम नहीं होता। हम सब मिल कर बाह्य कार्यक्रम की चर्चा करेंगे, बाहरी सद्विचार करेंगे, लेकिन अपने अंतर के भाव की चर्चा नहीं करते। इस कारण गूढ़ यों ही गूढ़ रह जाता है।

अपना जो गूढ़ भाव है, उसे मनुष्य खुद भी कभी-कभी नहीं पहचान पाता। या पहचाननता है तो व्यक्त नहीं कर सकता या अनेक कारणों से व्यक्त करना नहीं चाहता। इस तरह एक के बाद एक रुकावटें अड़ंगा लगाये बैठती है, परिणामस्वरूप सम्यक् दर्शन होता नहीं। - **ब्रह्मविद्या-मंदिर, एक अभिनव दर्शन**